बृहद्गच्छ का संक्षिप्त इतिहास

शिव प्रसाद

सातवीं शताब्दी में पश्चिम भारत में निर्ग्रन्थ श्वेताम्बर सम्प्रदाय में जो चैत्यवास की नींव पड़ी वह आगे की शताब्दियों में उत्तरोत्तर दृढ़ होती गयी और परिणामस्वरूप अनेक आचार्य एवं मुनि शिथिलाचारी हो गये। इनमें से कुछ ऐसे भी आचार्य थे जो चैत्यवास के विरोधी और सुविहितमार्ग के अनुयायी थे। चौलुक्य नरेश दुर्लभराज [वि० सं० १०६७-७८/ई० सन् १०१०-२२] की राजसभा में चैत्यवासियों और सुविहितमार्गियों के मध्य जो शास्त्रार्थ हुआ था, उसमें सुविहितमार्गियों की विजय हुई। इन सुविहितमार्गियों में बृहद्गच्छ के आचार्य भी थे।

बृहद्गच्छ के इतिहास के अध्ययन के लिये हमारे पास दो प्रकार के साक्ष्य हैं—

१—साहित्यिक २—अभिलेखिक

साहित्यिक साक्ष्यों को भी दो भागों में बाँटा जा सकता है, प्रथम तो ग्रन्थों एवं पुस्तकों की प्रशस्तियाँ और द्वितीय गच्छों की पट्टावलियाँ, गुर्वावलियाँ आदि।

प्रस्तुत निबन्ध में उक्त साक्ष्यों के आधार पर बृहद्गच्छ के इतिहास पर संक्षिप्त प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

वडगच्छ/बृहद्गच्छ के उल्लेख वाली प्राचीनतम प्रशस्तियाँ १२वीं शताब्दी के मध्य की हैं। इस गच्छ के उत्पत्ति के विषय में चर्चा करने वाली सर्वप्रथम प्रशस्ति वि० सं० १२३८/ई० सन् ११८२ में बृहद्गच्छीय वादिदेवसूरि के शिष्य रत्नप्रभसूरि द्वारा रचित **उपदेशमालाप्रकरणवृत्ति**[1] की है, जिसके अनुसार आचार्य उद्योतनसूरि ने आबू की तलहटी में स्थित धर्माण नामक सन्निवेश में न्यग्रोध वृक्ष के नीचे सात ग्रहों के शुभ लग्न को देखकर सर्वदेवसूरि सहित आठ मुनियों को आचार्यपद प्रदान किया। सर्वदेवसूरि वडगच्छ के प्रथम आचार्य हुये। तत्पश्चात् तपगच्छीय मुनिसुन्दरसूरि

---

१. श्रीमत्यर्बुदतुंगशैलशिखरच्छायाप्रतिष्ठास्पदे
धर्माणाभिधसन्निवेशविषये न्यग्रोधवृक्षो बभौ।
यत्शाखाशतसंख्यपत्रबहलच्छायास्वपायाहतं
सौख्येनोषितसंघमुख्यशटकश्रेणीशतीपंचकम् ॥ १ ॥

लग्ने क्वापि समस्तकार्यजनके सप्तग्रहलोकने
ज्ञात्वा ज्ञानवशाद्, गुरुं……देवाभिधः।
आचार्यान् रचयांचकार चतुरस्तस्मात् प्रवृद्धो बभौ
वंद्रोऽयं वटगच्छनाम रुचिरो जीयाद् युगानां शतीम् ॥ २ ॥

—गांधी, लालचन्द भगवानदास—"**कैटलाग ऑव पाम लीफ मैन्युस्क्रिप्ट्स् इन द शान्तिनाथ जैन भंडार कैम्बे**" भाग २, पृ. २८४-८६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

द्वारा रचित **गुर्वावली**[1] (रचनाकाल वि० सं० १४६६/ई० सन् १४०९), हरिविजयसूरि के शिष्य धर्मसागरसूरि द्वारा रचित **तपागच्छपट्टावली**[2] [रचनाकाल वि० सं० १६४८/ई० सन् १५९१] और मुनिमाल द्वारा रचित **बृहद्गच्छगुर्वावली**[3] [रचनाकाल वि० सं० १७५१/ई० सन् १६९४]; के अनुसार "वि० सं० ९९४ में अर्बुदगिरि के तलहटी में टेली नामक ग्राम में स्थित वटवृक्ष के नीचे सर्वदेवसूरि सहित आठ मुनियों को आचार्य पद प्रदान किया गया। इस प्रकार निर्ग्रन्थ श्वेताम्बर संघ में एक नये गच्छ का उदय हुआ जो वटवृक्ष के नाम को लेकर वटगच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुआ।" चूंकि वटवृक्ष के शाखाओं-प्रशाखाओं के समान इस गच्छ की भी अनेक शाखायें-प्रशाखायें हुईं, अतः इसका एक नाम बृहद्गच्छ भी पड़ा।

गच्छ निर्देश सम्बन्धी धर्माण सन्निवेश के सम्बन्ध में दो दलीलें पेश की जा सकती हैं—

प्रथम यह कि उक्त मत एक स्वगच्छीय आचार्य द्वारा उल्लिखित है और दूसरे १५वीं शताब्दी के तपगच्छीय साक्ष्यों से लगभग दो शताब्दी प्राचीन भी है अतः उक्त मत को विशेष प्रामाणिक माना जा सकता है।

जहाँ तक धर्माण सन्निवेश का प्रश्न है आबू के निकट उक्त नाम का तो नहीं बल्कि **वरमाण** नामक स्थान है, जो उस समय भी जैन तीर्थ के रूप में मान्य रहा। अतः यह कहा जा सकता है कि लिपि-दोष से वरमाण की जगह धर्माण हो जाना असंभव नहीं।

सबसे पहले हम वडगच्छीय आचार्यों की गुर्वावली को, जो ग्रन्थ प्रशस्तियों, पट्टावलियों एवं अभिलेखों से प्राप्त होती है, एकत्र कर विद्यावंशवृक्ष बनाने का प्रयास करेंगे। इस सम्बन्ध में सर्वप्रथम हम वडगच्छ के सुप्रसिद्ध आचार्य नेमिचन्द्रसूरि द्वारा रचित **आख्यानकमणिकोष**[4] (रचनाकाल ई० सन् ११वीं शती का प्रारम्भिक चरण) की उत्थानिका में उल्लिखित बृहद्गच्छीय आचार्यों की विद्यावंशावली का उल्लेख करेंगे, जो इस प्रकार है।[5]

अब हम **उत्तराध्ययनसूत्र की सुखबोधा टीका**[6] (रचनाकाल वि० सं० ११२९/ई० सन् १०७२) में उल्लिखित नेमिचन्द्रसूरि के इस वक्तव्य पर विचार करेंगे कि ग्रन्थकार ने अपने गुरुभ्राता मुनिचन्द्रसूरि के अनुरोध पर उक्त ग्रन्थ की रचना की।

---

१. मुनि दर्शन विजय—संपा० **पट्टावलीसमुच्चय,** भाग १, पृ. ३४;

२. वही, पृ. ५२-५३;

३. वही, भाग २, पृ. १८८;

४. प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, वाराणसी द्वारा ई० सन् १९६२ में प्रकाशित.

५. देखिये—तालिका नं० १;

६ देवेन्द्रगणिश्चेमामुद्धृतवान् वृत्तिकां तद्विनेयः।
गुरुसोदर्यश्रीमन्मुनिचन्द्राचार्यवचनेन ॥ ११ ॥
शोधयतु बृहदनुग्रहबुद्धिं मयि संविधाय विज्ञजनः।
तत्र च मिथ्यादुष्कृतमस्तु कृतमसंगतं यदिहि ॥ १२ ॥
—गांधी, लालचन्द भगवान दास—पूर्वोक्त भाग १, पृ० ११४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मुनिचन्द्रसूरि ने स्वरचित ग्रन्थों में जो गरु परम्परा दी है, उससे ज्ञात होता है कि उनके गुरु का नाम यशोदेव और दादागुरु का नाम सर्वदेव[1] था। प्रथम तालिका में उद्योतनसूरि द्वितीय के समकालीन जिन ५ आचार्यों का उल्लेख है, उनमें से चौथे आचार्य का नाम देवसूरि है। ये देवसूरि मुनिचन्द्रसूरि के प्रगुरु सर्वदेवसूरि से अभिन्न हैं ऐसा प्रतीत होता है। इस प्रकार नेमिचन्द्रसूरि और मुनिचन्द्रसूरि परस्पर सतीर्थ्य सिद्ध होते हैं।

मुनिचन्द्रसूरि का शिष्य परिवार बड़ा विशाल था। इनके ख्यातिनाम शिष्यों में देवसूरि[2], मानदेवसूरि[3] और अजितदेवसूरि[4] के नाम मिलते हैं। इसी प्रकार देवसूरि (वादिदेव सूरि) के परिवार में भद्रेश्वरसूरि, रत्नप्रभसूरि, विजयसिंहसूरि आदि शिष्यों एवं प्रशिष्यों का उल्लेख मिलता है।[5] इसी प्रकार वादिदेवसूरि के गुरुभ्राता मानदेवसूरि के शिष्य जिनदेवसूरि और उनके शिष्य हरिभद्रसूरि का नाम मिलता है।[6] वादिदेवसूरि के तीसरे गुरुभ्राता अजितदेवसूरि के शिष्यों में विजयसेनसूरि और उनके शिष्य सुप्रसिद्ध सोमप्रभाचार्य भी हैं।[7] मुनिचन्द्रसूरि के शिष्य परिवार का जो वंशवृक्ष बनता है, वह इस प्रकार है[8] —

नेमिचन्द्रसूरि द्वारा रचित **महावीरचरियं** [रचनाकाल वि० सं० ११४१/ई० सन् १०८४] की प्रशस्ति में वडगच्छ को चन्द्रकुल से उत्पन्न माना गया है,[9] अतः समसामयिक चन्द्रकुल [जो पीछे चन्द्रगच्छ के नाम से प्रसिद्ध हुआ] की आचार्य परम्परा पर भी एक दृष्टि डालना आवश्यक है। चन्द्रगच्छ में प्रख्यात वर्धमानसूरि, जिनेश्वरसूरि, बुद्धिसागरसूरि, नवाङ्गवृत्तिकार अभयदेवसूरि आदि अनेक आचार्य हुए। आचार्य जिनेश्वर जिन्होंने चौलक्य नरेश दुर्लभराज की सभा में चैत्यवासियों को शास्त्रार्थ में परास्त कर गुर्जरधरा में विधिमार्ग का बलतर समर्थन किया था, वर्धमानसूरि के शिष्य थे।[10] आबू स्थित विमलवसही के प्रतिमा प्रतिष्ठापकों में वर्धमानसूरि का भी नाम लिया जाता है।[11] इनका समय विक्रम संवत् की ११वीं शती सुनिश्चित है। वर्धमानसूरि कौन थे? इस प्रश्न का भी उत्तर ढूँढना आवश्यक है।

खरतरगच्छीय आचार्य जिनदत्तसूरि द्वारा रचित **गणधरसार्धशतक** [रचनाकाल वि० सं० बारहवीं शताब्दी का उत्तरार्ध] और जिनपालोपाध्याय द्वारा रचित **खरतरगच्छबृहद्गुर्वावली**

---

१. देसाई 'मोहनलाल दलीचन्द—**जैनसाहित्य नो संक्षिप्त इतिहास**, पृ० २४१-४२।
२. वही, पृ० २४८-४९।
३. वही, पृ० २८३।
४. वही, पृ० ३२१।
५. गाँधी, पूर्वोक्त, भाग २, पृ० २८८।
६. गाँधी, पूर्वोक्त भाग २, पृ० २३९-४०।
७. देसाई, पूर्वोक्त पृ० २८३-४।
८. देखिये—तालिका न० २।
९. गाँधी, पूर्वोक्त भाग २, पृ० ३३९।
१०. **कथाकोशप्रकरण**—प्रस्तावना विभाग, संपादक—मुनि जिनविजय, पृ० २।
११. नाहटा, अगरचन्द—"विमलवसही के प्रतिष्ठापकों में वर्धमानसूरि भी थे।"
—**जैन सत्य प्रकाश**, वर्ष ५, अंक ५-६ पृ० २१२-२१४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

[रचनाकाल वि० सं० तेरहवीं शती का अंतिम चरण] से ज्ञात होता है कि वर्धमानसूरि पहले एक चैत्यवासी आचार्य के शिष्य थे, परन्तु बाद में उनके मन में चैत्यवास के प्रति विरोध की भावना जागृत हुई और उन्होंने अपने गुरु से आज्ञा लेकर सुविहितमार्गीय आचार्य उद्योतनसूरि से उपसम्पदा ग्रहण की।[1]

गणधरसार्धशतक की गाथा ६१-६३ में देवसूरि, नेमिचन्द्रसूरि और उद्योतनसूरि के बाद वर्धमानसूरि का उल्लेख है। पूर्वप्रदर्शित तालिका नं० १ में देवसूरि, नेमिचन्द्रसूरि (प्रथम), उद्योतनसूरि (द्वितीय) के बाद आम्रदेवसूरि का उल्लेख है। इस प्रकार उद्योतनसूरि के दो शिष्यों का अलग-अलग साक्ष्यों से उल्लेख प्राप्त होता है। इस आधार पर उद्योतनसूरि (प्रथम) और वर्धमानसूरि को परस्पर गुरुभ्राता माना जा सकता है। अब वर्धमानसूरि की शिष्य परम्परा पर भी प्रसंगवश कुछ प्रकाश डाला जायेगा।

वर्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि और बुद्धिसागरसूरि का उल्लेख प्राप्त होता है।[2] जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि जिनेश्वरसूरि ने चौलुक्यनरेश दुर्लभराज की सभा में शास्त्रार्थ में चैत्यवासियों को परास्त कर विधिमार्ग का समर्थन किया था।

जिनेश्वरसूरि के ख्यातिनाम शिष्यों में नवाङ्गवृत्तिकार अभयदेवसूरि, जिनभद्र अपरनाम धनेश्वरसूरि और जिनचन्द्रसूरि के उल्लेख प्राप्त होते हैं।[3] इनमें से अभयदेवसूरि की शिष्य परम्परा आगे चली।

अभयदेवसूरि के शिष्यों में प्रसन्नचन्द्रसूरि, जिनवल्लभसूरि और वर्धमानसूरि के उल्लेख मिलते है।[4] प्रसन्नचन्द्रसूरि के शिष्य देवभद्रसूरि हुए, जिन्होंने जिनवल्लभसूरि और जिनदत्तसूरि को आचार्यपद प्रदान किया।[5]

जिनवल्लभसूरि वास्तव में एक चैत्यवासी आचार्य के शिष्य थे, परन्तु इन्होंने अभयदेवसूरि के पास विद्याध्ययन किया था और बाद में अपने चैत्यवासी गुरु को आज्ञा लेकर अभयदेवसूरि से उपसम्पदा ग्रहण की।[6] जिनवल्लभसूरि से ही खरतरगच्छ का प्रारम्भ हुआ। युगप्रधानाचार्यगुर्वावली में यद्यपि वर्धमानसूरि को खरतरगच्छ का आदि आचार्य कहा गया है, परन्तु वह समीचीन प्रतीत नहीं होता। वस्तुतः अभयदेवसूरि के मृत्योपरान्त उनके अन्यान्य शिष्यों के साथ जिनवल्लभसूरि की प्रतिस्पर्धा रही, अतः इन्होंने विधिपक्ष की स्थापना की, जो आगे चलकर **खरतरगच्छ** के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[7]

अभयदेवसूरि के तीसरे शिष्य और पट्टधर वर्धमानसूरि हुए। इन्होंने **मनोरमाकहा** [रचनाकाल वि० सं० ११४०/ई० सन् १०८३] और **आदिनाथचरित** [रचनाकाल वि० सं० ११६०/ई० सन्

१. मुनि जिनविजय—पूर्वोक्त पृ० २६।
२. वही, पृ० ८।
३. देसाई, पूर्वोक्त पृ० २०८।
४. देसाई—पूर्वोक्त पृ० २१७-१९।
५. मुनि जिनविजय—पूर्वोक्त पृ० १५।
६. वही, पृ० १६।
७. वही, पृ० ५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

११०३] की रचना की।[1] वि० सं० ११८७ एवं वि० सं० १२०८ के अभिलेखों में वडगच्छीय चक्रेश्वरसूरि को वर्धमानसूरि का शिष्य कहा गया है।[2] इसी प्रकार वि० सं० १२१४ के वडगच्छ से ही सम्बन्धित एक अभिलेख में वडगच्छीय परमानन्दसूरि के गुरु का नाम चक्रेश्वरसूरि और दादा-गुरु का नाम वर्धमानसूरि उल्लिखित है।[3] इसी प्रकार वडगच्छीय चकेश्वरसूरि के गुरु और परमानन्दसूरि के दादागुरु वर्धमानसूरि और अभयदेवसूरि के शिष्य वर्धमानसूरि को अभिन्न माना जा सकता है। जहाँ तक गच्छ सम्बन्धी समस्या का प्रश्न है, उसका समाधान यह है कि चन्द्रगच्छ और वडगच्छ दोनों का मूल एक होने से इस समय तक आचार्यों में परस्पर प्रतिस्पर्धा की भावना नहीं दिखाई देती। गच्छीयप्रतिस्पर्धा के युग में भी एक गच्छ के आचार्य दूसरे गच्छ के आचार्य के शिष्यों को विद्याध्ययन कराना अपारम्परिक नहीं समझते थे। अतः बृहद्गच्छीय चक्रेश्वरसूरि एवं परमानन्द-सूरि के गुरु चन्द्रगच्छीय वर्धमानसूरि हों तो यह तथ्य प्रतिकूल नहीं लगता।

इस प्रकार चन्द्रगच्छ और खरतरगच्छ के आचार्यों का जो विद्यावंशवृक्ष बनता है, वह इस प्रकार है[4] :—

अब हम वडगच्छीय वंशावली और पूर्वोक्त चन्द्रगच्छीय वंशावली को परस्पर समायोजित करते हैं, उससे जो विद्यावंशवृक्ष निर्मित होता है, वह इस प्रकार है[5] —

अब इस तालिका के बृहद्गच्छीय प्रमुख आचार्यों के सम्बन्ध में ज्ञातव्य बातों पर संक्षिप्त प्रकाश डाला जायेगा।

नेमिचन्द्रसूरि[6] —जैसा कि पहले कहा जा चुका है, वडगच्छ के उल्लेख वाली प्राचीनतम

१. वही, पृ० १४।

२. सं[वत्] ११८७ [वर्षे] फागु[ल्गु]ण वदि ४ सोमे रूद्रसिणवाडास्थानीय प्राग्वाटवंसा[शा]न्वये श्रे० साहिलसंताने पलाद्वंदा [?] श्रे० पासल संतणाग देवचंद्र आसधर आंबा अंबकुमार श्रीकुमार लोयण प्रकृति श्वासिणि शांतीय रामति गुणसिरि प्रहूहि तथा पल्लडीवास्तव्य अंबदेवप्रभृतिसमस्तश्रावकश्राविकासमुदायेन अर्बुद-चैत्यतीर्थे श्रीरि[ऋ]षभदेवबिंबं निःश्रेयसे कारितं बृहद्गच्छीय श्रीसंविज्ञविहारि श्रीवर्धमानसूरिपाद-पद्मोप[सेवि] श्रीचक्रेश्वरसूरिभिः प्रतिष्ठितं ॥

मुनि जयन्तविजय—संपा० **अर्बुद प्राचीन जैन लेख सन्दोह**, लेखाङ्क ११४।

ॐ। संवत् १२०८ फागुणसुदि १० रवौ श्रीबृहद्गच्छीयसंविज्ञविहारी[रि]श्रीवर्धमानसूरिशिष्यैः श्रीचक्रे-श्वरसूरिभिः प्रतिष्ठितं प्राग्वाट वंशीय ......।

मुनि विशाल विजय, संपा० श्रीआरासणातीर्थ, लेखाङ्क ११।

३. संवत् १२१४ फाल्गुण वदि 'शुक्रवारे श्रीबृहदगच्छोद्भवसंविग्नविहारि श्रीवर्धमानसूरीयश्रीचक्रेश्वरसूरि शिष्य ....श्रीपरमानन्दसूरिसमेतैः ....प्रतिष्ठितं।

मुनि विशाल विजय, वही, लेखाङ्क १४।

४. देखिये, तालिका न० ३।

५. तालिका न० ४।

६. विशेष विवरण के लिए द्रष्टव्य—

मुनि पुण्यविजय द्वारा सम्पादित **आख्यानकमणिकोष** की प्रस्तावना, पृ० ६-८;

देसाई, मोहनलाल दलीचन्द, **जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास** पृ० २१८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रशस्तियाँ इन्हीं की हैं। इनका समय विक्रम सम्वत् की बारहवीं शती सुनिश्चित है। इनके द्वारा लिखे गये ५ ग्रन्थ उपलब्ध हैं जो इस प्रकार हैं—

१. आख्यानकमणिकोष [मूल]
२. आत्मबोधकुलक
३. उत्तराध्ययनवृत्ति [सुखबोधा]
४. रत्नचूड़कथा
५. महावीरचरियं

इनमें प्रथम दो ग्रन्थ सामान्य मुनि अवस्था में लिखे गये थे, इसी लिये इन ग्रन्थों की अन्त्य प्रशस्तियों में इनका नाम **देविन्द** लिखा मिलता है। उत्तराध्ययनवृत्ति और रत्नचूड़कथा की प्रशस्तियों में देवेन्द्रगणि नाम मिलता है, जिससे स्पष्ट है कि उक्त ग्रन्थ गणि "पद" मिलने के पश्चात् लिखे गये। उक्त दोनों ग्रन्थों के कुछ ताड़पत्र की प्रतियों में नेमिचन्द्रसूरि नाम भी मिलता है। अन्तिम ग्रन्थ **महावीरचरियं** वि० सं० ११४१/ई० सन् १०८५ में लिखा गया है। उक्त ग्रन्थों की प्रशस्तियों से ज्ञात होता है कि इनके गुरु का नाम आम्रदेवसूरि और प्रगुरु का नाम उद्योतनसूरि था, जो सर्वदेवसूरि की परम्परा के थे।

मुनिचन्द्रसूरि[1]—आप उपरोक्त नेमिचन्द्रसूरि के सतीर्थ्य थे। आचार्य सर्वदेवसूरि के शिष्य यशोभद्रसूरि एवं नेमिचन्द्रसूरि थे। यशोभद्रसूरि से इन्होंने दीक्षा ग्रहण की एवं नेमिचन्द्रसूरि से आचार्य पद प्राप्त किया। ऐसा कहा जाता है कि इन्होंने कुल ३१ ग्रन्थ लिखे थे। इनमें से आज १० ग्रन्थ विद्यमान हैं जो इस प्रकार हैं—

१. अनेकान्तजयपताका टिप्पनक
२. ललितविस्तरापञ्जिका
३. उपदेशपद–सुखबोधावृत्ति
४. धर्मबिन्दु–वृत्ति
५. योगबिन्दु-वृत्ति
६. कर्मप्रवृत्ति-विशेषवृत्ति
७. आवश्यक [पाक्षिक] सप्ततिका
८. रसाउलगाथाकोष
९. सार्धशतकचूर्णी
१०. पार्श्वनाथस्तवनम्

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इनके ख्यातिनाम शिष्यों में वादिदेवसूरि, मानदेवसूरि और अजितदेवसूरि प्रमुख थे। वि० सं० ११७८ में इनका स्वर्गवास हुआ।

वादिदेवसूरि—आप मुनिचन्द्रसूरि के शिष्य थे। आबू से २५ मील दूर **मडार** नामक ग्राम में

---

१. परीख, रसिक लाल छोटा लाल एवं शास्त्री, केशवराम काशीराम—
संपा० **गुजरात नो राजकीयअने सांस्कृतिक इतिहास**, भाग ४, पृ० २९०-९१;
देसाई, पूर्वोक्त पृ० ३४१-४३।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

वि० सं० ११४३/ई० सन् १०८६ में इनका जन्म हुआ था।[१] इनके पिता का नाम वारिनाग और माता का नाम जिनदेवी था। आचार्य मुनिचन्द्रसूरि के उपदेश से माता-पिता ने बालक को उन्हें सौंप दिया और उन्होंने वि० सं० ११५२/ई० सन् १०९६ में इन्हें दीक्षित कर मुनि रामचन्द्र नाम रखा। वि० सं० ११७४/ई० सन् १११७ में इन्होंने आचार्य पद प्राप्त किया और देवसूरि नाम से विख्यात हुए।[२] वि० सं० ११८१-८२/ई० सन् ११२४ में अणहिलपत्तन स्थित चौलुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज की राजसभा में इन्होंने कर्णाटक से आये दिगम्बर आचार्य कुमुदचन्द्र को शास्त्रार्थ में पराजित किया और वादिदेवसूरि के नाम से प्रसिद्ध हुए।[३] वादविषयक ऐतिहासिक उल्लेख कवि यशश्चन्द्र कृत "**मुद्रितकुमुदचन्द्र**" नामक नाटक में प्राप्त होता है। ये गुजरात में प्रमाणशास्त्र के श्रेष्ठ विद्वानों में से थे। इन्होंने प्रमाणशास्त्र पर "**प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार**" नामक ग्रन्थ आठ परिच्छेदों में रचा और उसके ऊपर "**स्याद्वादरत्नाकर**" नामक मोटी टीका की भी रचना की। इस ग्रन्थ की रचना में आपको अपने शिष्यों भद्रेश्वरसूरि और रत्नप्रभसूरि से सहायता प्राप्त हुई।[४] इसके अलावा इनके द्वारा रचित ग्रन्थ इस प्रकार हैं—

मुनिचन्द्रसूरिगुरुस्तुति, मुनिचन्द्रगुरुविरहस्तुति, यतिदिनचर्या, उपधानस्वरूप, प्रभातस्मरण, उपदेशकुलक, संसारोद्विग्नमनोरथकुलक, कलिकुंडपार्श्वस्तवनम्[५] आदि।

हरिभद्रसूरि[६]—बृहद्गच्छीय आचार्य मानदेव के प्रशिष्य एवं आचार्य जिनदेव के शिष्य हरिभद्रसूरि चौलुक्य नरेश जयसिंह सिद्धराज के समकालीन थे। इनके द्वारा रचित ग्रन्थों से ज्ञात होता है कि द्रव्यानुयोग, उपदेश, कथाचरितानुयोग आदि विषयों में संस्कृत-प्राकृत भाषा में इनकी खास विद्वत्ता और व्याख्या शक्ति विद्यमान थी। वि० सं० ११७२/ई० सन् १११६ में इन्होंने तीन ग्रन्थों की रचना की जो इस प्रकार है—

"**बंध स्वामित्व**" षटशीति कर्म ग्रन्थ के ऊपर वृत्ति; जिनवल्लभसूरि द्वारा रचित '**आगमिक वस्तुविचारसारप्रकरण**" पर वृत्ति और **श्रेयांसनाथचरित**"।

वि० सं० ११८५/ई० सन् ११२९ के पाटण में यशोनाग श्रेष्ठी के उपाश्रय में रहते हुए इन्होंने **प्रशमरतिप्रकरण** पर वृत्ति की रचना की।

रत्नप्रभसूरि[७]—आचार्य वादिदेवसूरि के शिष्य रत्नप्रभसूरि विशिष्ट प्रतिभाशाली, तार्किक, कवि और विद्वान् थे। इन्होंने **प्रमाणनयतत्त्वालोकालंकार** पर ५००० श्लोक प्रमाण **रत्नाकरावतारिका** **नाम** की टीका की रचना की है। इसके अलावा इन्होंने **उपदेशमाला** पर **दोघट्टी वृत्ति** [रचनाकाल

१. त्रिपुटी महाराज—जैनपरम्परा नो इतिहास, भाग २, पृ० ५६०।
२. परीख और शास्त्री—पूर्वोक्त भाग ४, पृ० २९४।
३. वही।
४. वही।
५. मुनि चतुर विजय—संपा० **जैन स्तोत्र सन्दोह**, भाग १, पृ० ११८।
६. परीख और शास्त्री-वही;
देसाई, पूर्वोक्त पृ० २५०।
७. परीख और शास्त्री,—पूर्वोक्त पृ० ३०३-४;

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि० सं० १२३८/ई० सन् ११८२], **नेमिनाथचरित** [रचनाकाल वि० सं० १२३३/ई० सन् ११७६], **मतपरीक्षापंचाशत**; **स्याद्वादरत्नाकर** पर लघु टीका आदि ग्रन्थों की रचना की है।

हेमचन्द्रसूरि[1]—आप आचार्य अजितदेवसूरि के शिष्य एवं आचार्य मुनिचन्द्रसूरि के प्रशिष्य थे। इन्होंने **नेमिनाभेयकाव्य** की रचना की, जिसका संशोधन महाकवि श्रीपाल ने किया। श्रीपाल जयसिंह सिद्धराज के दरबार का प्रमुख कवि था।

हरिभद्रसूरि—इनका जन्म और दीक्षादि प्रसंग जयसिंह सिद्धराज के काल में उन्हीं के राज्य प्रदेश में हुआ, ऐसा माना जाता है।[2] ये प्रायः अणहिलवाड़ में ही रहा करते थे। सिद्धराज और कुमारपाल के मन्त्री श्रीपाल की प्रार्थना पर इन्होंने संस्कृत-प्राकृत और अपभ्रंश भाषा में चौबीस तीर्थङ्करों के चरित्र की रचना की। इनमें से चन्द्रप्रभ, मल्लिनाथ और नेमिनाथ का चरित्र ही आज उपलब्ध हैं। तीनों ग्रन्थ २४००० श्लोक प्रमाण हैं। यदि एक तीर्थङ्कर का चरित्र ८००० श्लोक माना जाये तो तो २४ तीर्थङ्करों का चरित्र कुल दो लाख श्लोक के लगभग रहा होगा, ऐसा अनुमान किया जाता है।[3] **नेमिनाथचरिउ** की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि इस ग्रन्थ की रचना वि० सं० १२१६ में हुई थी।[4] अपने ग्रन्थों के अन्त में इन्होंने जो प्रशस्ति दी है, उसमें इनके गुरुपरम्परा का भी उल्लेख है जिसके अनुसार वर्धमान महावीर स्वामी के तीर्थ में कोटिक गण और वज्र शाखा में चन्द्रकुल के वडगच्छ के अन्तर्गत जिनचन्द्रसूरि हुए। उनके दो शिष्य थे, आम्रदेवसूरि और श्रीचन्द्रसूरि। इन्हीं श्रीचन्द्रसूरि के शिष्य थे आचार्य हरिभद्रसूरि जिन्हें आम्रदेवसूरि ने अपने पट्ट पर स्थापित किया।[5]

सोमप्रभसूरि[6]—आचार्य अजितदेवसूरि के प्रशिष्य एवं आचार्य विजयसिंहसूरि के शिष्य आचार्य सोमप्रभसूरि चौलुक्य नरेश कुमारपाल [वि० सं० ११९९-१२२९/ई० सन् ११४२-११७२] के समकालीन थे। इन्होंने वि० सं० १२४१/ई० सन् ११८४ में कुमारपाल की मृत्यु के १२ वर्ष पश्चात् अणहिलवाड़ में "**कुमारपालप्रतिबोध**" नामक ग्रन्थ की रचना की। इस ग्रन्थ में हेमचन्द्रसूरि और कुमारपाल सम्बन्धी वर्णित तथ्य प्रामाणिक माने जाते हैं। इनकी अन्य रचनाओं में "**सुमतिनाथचरित**", "**सूक्तमुक्तावली**" और "**सिन्दूरप्रकरण**" के नाम मिलते हैं।

नेमिचन्द्रसूरि[7]—ये आम्रदेवसूरि [आख्यानकमणिकोषवृत्ति के रचयिता] के शिष्य थे। इन्होंने "**प्रवचनसारोद्धार**" नामक दार्शनिक ग्रन्थ जो ११९९ श्लोक प्रमाण है, की रचना की।

अन्य गच्छों के समान वडगच्छ से भी अनेक शाखायें एवं प्रशाखायें अस्तित्व में आयीं। वि० सं० ११४९ में यशोदेव–नेमिचन्द्र के शिष्य और मुनिचन्द्रसूरि के ज्येष्ठ गुरुभ्राता आचार्य चन्द्रप्रभ-

---

१. देसाई, मोहनलाल दलीचन्द — पूर्वोक्त पृ० २३५।
२. गांधी लालचन्द भगवानदास — "**ऐतिहासिक जैन लेखो**" पृ० १३३।
३. वही पृ० १३३।
४. वही पृ० १३४।
५. मुनि पुण्य विजय संपा० **आख्यानकमणिकोषवृत्ति**, प्रस्तावना पृ० ८।
६. देसाई, पूर्वोक्त पृ० २७५।
७. मुनिपुण्यविजय, पूर्वोक्त पृ० ८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सूरि से पूर्णिमा पक्ष का आविर्भाव हुआ।[1] इसी प्रकार आचार्य वादिदेवसूरि के शिष्य पद्मप्रभसूरि ने वि० सं० ११७४/ई० सन् १११७ में नागौर में तप करने से **"नागौरी तपा"** विरुद् प्राप्त किया और उनके शिष्य **"नागोरीतपगच्छीय"** कहलाने लगे।[2] इसी प्रकार इस गच्छ के अन्य शाखाओं का भी उल्लेख प्राप्त होता है।[3]

श्वेताम्बर जैन सम्प्रदाय से सम्बद्ध प्रकाशित जैन लेख संग्रहों में वडगच्छ से सम्बन्धित अनेक लेख संग्रहीत हैं। इन अभिलेखों में वडगच्छीय आचार्यों द्वारा जिन प्रतिमा प्रतिष्ठा, जिनालयों की स्थापना आदि का उल्लेख है। ये लेख १२वीं शताब्दी से लेकर १७वीं-१८वीं शताब्दी तक के हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि वडगच्छीय आचार्य साहित्य सृजन के साथ-साथ जिनप्रतिमा प्रतिष्ठा एवं जिनालयों की स्थापना में समान रूप से रुचि रखते रहे। वर्तमान काल में इस गच्छ का अस्तित्व नहीं है।

(क्रमशः पृ० ११४ पर तालिका है)

शोध सहायक
पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान
वाराणसी

---

१. नाहटा, अगरचन्द—"जैन श्रमणों के गच्छों पर संक्षिप्त प्रकाश" **श्रीयतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ** पृ० १५३।

२. वही पृ० १५१।

३. वही पृ० १५४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तालिका नं० १

आख्यानकमणिकोष की प्रस्तावना में दी गयी बृहद्गच्छीय आचार्यों की तालिका

- बृहद्गच्छीय देवसूरि के वंश में
  - अजितदेव सूरि
    - आनन्दसूरि (पट्टधर)
      - नेमिचन्द्रसूरि (पट्टधर) [आख्यानकमणिकोष (मूल) के कर्त्ता]
      - प्रद्योतनसूरि (पट्टधर)
      - जिनचन्द्रसूरि (पट्टधर)
        - आम्रदेवसूरि (शिष्य) [आख्यानकमणिकोष के वृत्तिकार]
          - हरिभद्रसूरि (मुख्य-पट्टधर)
          - विजयसेनसूरि (शिष्य-पट्टधर)
            - समन्तभद्रसूरि
          - नेमिचन्द्रसूरि (शिष्य-पट्टधर)
          - यशोदेवसूरि (शिष्य-पट्टधर)
          - गुणाकरसूरि (शिष्य)
          - पार्श्वदेव (शिष्य)
        - श्रीचन्द्रसूरि (शिष्य)
          - हरिभद्रसूरि (शिष्य)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तालिका नं० २

वडगच्छीय आचार्य मुनिचन्द्रसूरि के गुरु-शिष्य परम्परा की तालिका

उद्योतनसूरि (प्रथम)

सर्वदेवसूरि

देवसूरि (विहारुक)

नेमिचन्द्रसूरि (प्रथम)

उद्योतनसूरि (द्वितीय)

आम्रदेवसूरि (प्रथम)

देवेन्द्रगणि अपरनाम नेमिचन्द्रसूरि (द्वितीय)

उद्योतनसूरि (द्वितीय) के समकालीन ५ आचार्य

यशोदेवसूरि | प्रद्युम्नसूरि | मानदेवसूरि | देवसूरि (सर्वदेवसूरि) | अजितदेवसूरि

देवसूरि (सर्वदेवसूरि)

यशोभद्रसूरि-नेमिचन्द्रसूरि

मुनिचन्द्रसूरि

वादिदेवसूरि वि० सं० ११७४-१२२५ | मानदेवसूरि | अजितदेवसूरि

वादिदेवसूरि:
भद्रेश्वरसूरि (पट्टधर) वि० सं० १२२६ | रत्नप्रभसूरि वि० सं० १२३८ में **उपदेशमालावृत्ति** की रचना | विजयदेवसूरि

भद्रेश्वरसूरि:
परमानन्दसूरि
खण्डन-मण्डन नामक ग्रन्थ के प्रणेता

मानदेवसूरि:
जिनदेवसूरि

जिनदेवसूरि:
हरिभद्रसूरि
वि० सं० ११८५ में **क्षेत्रसमासवृत्ति** की रचना

अजितदेवसूरि:
हेमचन्द्रसूरि वि० सं० ११८० में **नेमिनाभेयकाव्य** की रचना | विजयसिंहसूरि

विजयसिंहसूरि:
सोमप्रभसूरि
वि० सं० १२४१ में **कुमारपालप्रतिबोध** की रचना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तालिका नं० ३

चन्द्रकुल (चन्द्रगच्छ) के आचार्यों का विद्यावंशवृक्ष

- उद्योतनसूरि
  - वर्धमानसूरि — उपदेशपद [हरिभद्र] टीका, उपदेशमाला बृहद्टीका, उपमितिभवप्रपंचनामसमुच्चय आदि ग्रन्थों के प्रणेता; वि० सं० १०८८ में आबू स्थित विमलवसही में प्रतिमा प्रतिष्ठापक
    - जिनेश्वरसूरि — प्रमालक्षण [सटीक], पञ्चलिंगीप्रकरण, निर्वाणलीलाकथा, वीरचरित्र, हरिभद्रसूरि के अष्टकों पर टीका, षटस्थानप्रकरण, कथाकोषप्रकरण आदि ग्रन्थों के प्रणेता
      - जिनचन्द्रसूरि [पट्टधर] संवेगरंगशाला के रचनाकार [वि० सं० ११२५]
      - अभयदेवसूरि [पट्टधर]
        - प्रसन्नचन्द्रसूरि
          - देवभद्रसूरि
            - चन्द्रगच्छीय
        - जिनवल्लभसूरि
          - जिनदत्तसूरि
          - (खरतरगच्छ प्रारम्भ)
        - वर्धमानसूरि [अभयदेवसूरि के पट्टधर] वि० सं० ११४० में मनोरमाकहा, वि० सं० ११६० में आदिनाथचरित्र
          - चक्रेश्वरसूरि [वि० सं० ११८७-१२८८ अभिलेखानुसार]
            - परमानन्दसूरि वि० सं० १२१४ [अभिलेखानुसार]
          - (बृहद्गच्छीय: चक्रेश्वरसूरि, परमानन्दसूरि)
      - जिनभद्र अपरनाम धनेश्वरसूरि सुरसुन्दरीकहा [वि० सं० १०९५]
    - बुद्धिसागरसूरि [वि० सं० १०८० में पञ्चग्रंथीव्याकरण की रचना]

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तालिका नं० ४

वडगच्छीय वंशावली और चन्द्रगच्छीय वंशावली के परस्पर समायोजन से निर्मित विद्यावंशवृक्ष

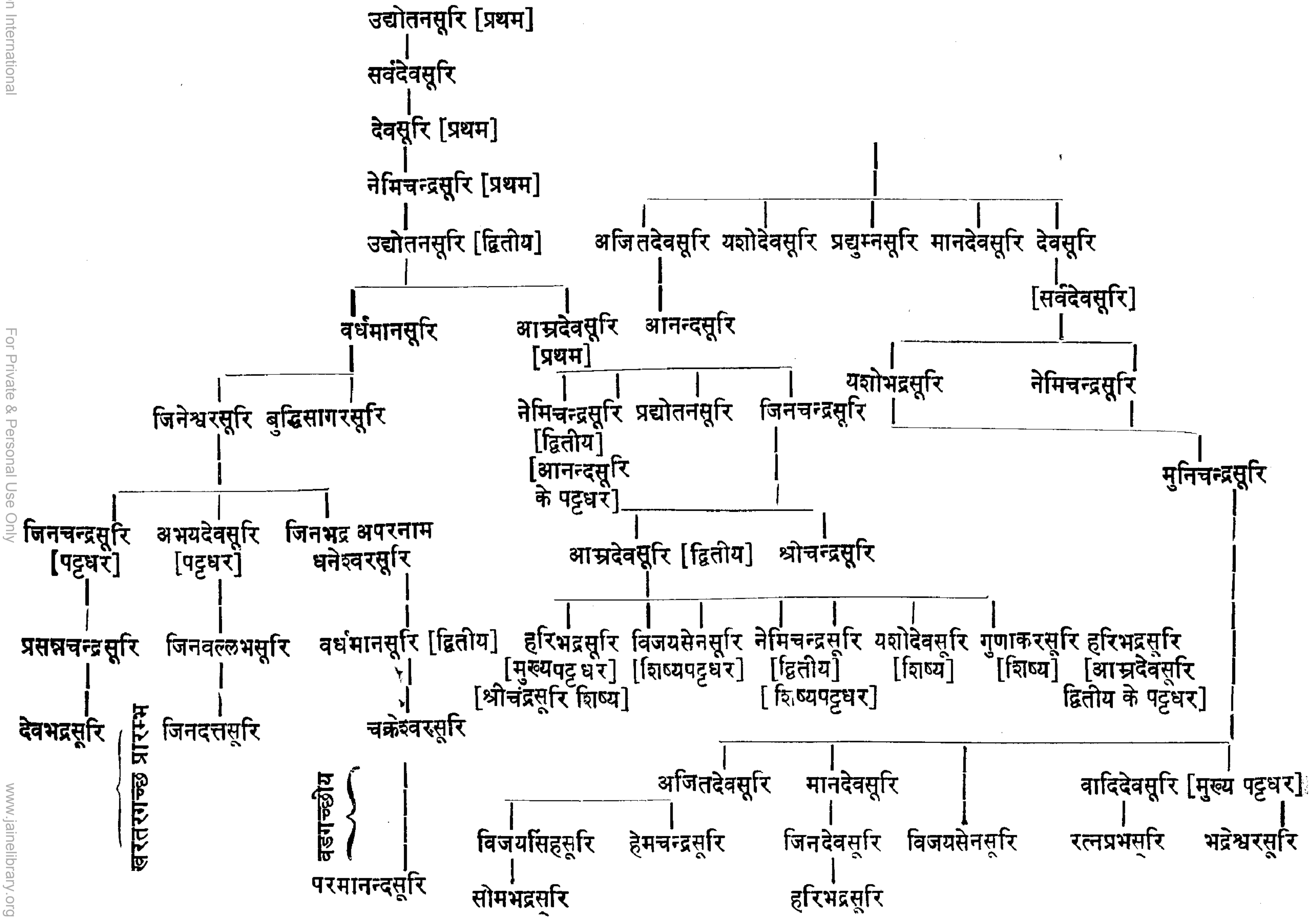

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org